हिन्दी आलोचना और विजय बहादुर सिंह की धारणाएँ

खाजी मुख्तारोद्दिन खमरोद्दिन
(केंद्र सहायक, य.च.म.मु.वि.नाशिक)
अ. केंद्र : शंकरराव चव्हाण महा. अर्धापूर

सारांश :हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के बाद उन्हीं के शिष्य डॉ. विजय बहादुर सिंह ने अपनी प्रखर बौद्धिकता के आधार पर हिंन्दी आलोचना के मानदंड निर्धारित किए हैं । सागर विश्वविद्यालय से आचार्य नंददुलारे जी की छत्र–छाया में पले बडे हुए विजय जी ने 'बृहत्त्रयी'– प्रसाद, निराला और पंत, 'कविता और संवेदना', 'जनकवि', 'नागार्जुन का रचना संसार', 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र', 'महादेवी की कविता का नेपथ्य', 'लोकप्रिय कवि भवानी प्रसाद मिश्र', 'वसंत पोतदार असाधारण गद्य शिल्पी', 'नागार्जुन संवाद', 'आलोचन का स्वदेश–आ. नंददुलारे वाजपेयी की जीवनी' आलोचनात्मक रचनाओं का सृजन करके हिन्दी आलोचना को विकसित करने का प्रयास किया हैं

***प्रस्तवाना* :**

विजय बहादुर सिंह कवि, आलोचक, गद्य–लेखक के साथ–साथ एक निर्भिळ वक्ता के रुप संपूर्ण देश में प्रसिध्द हैं । इनमें आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. रामविलास शर्मा का मिलाजुला रुप दिखाई देता हैं । वे आलोचना के मानदंड को भारतीय परंपरा के आधार पर परख करते हैं । इन रचनाओ के आधार पर विजय बहादुर सिंह की आलोचना की मान्यताएँ / धारणाओं को रेखांकित करने का प्रयास किया गया हैं ।

1)कविता प्राणों की तरह स्वभाव में होती है, वह हर वक्त बनी रहती है । पानी में चलती फिरती मछली की तरह गहरी सतहों में खो जाती है । यह भाव जिस कविता में नहीं है वहकविता कविता नही हो सकती । कविता कोशिशों या अभ्यासों की कमाई नहीं है । कोशिश भाषा और उसकी अभिव्यक्ति में तो देखी जा सकती है, पर स्फुरण का मामला कोशिश का मामला नहीं है । स्फुरण का संबंध स्वभाविकता से होता है । इसको स्पष्ट करते हुए विजय बहादुर सिंह कहते हैं कि 'मुझे बार–बार महान शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्लखॉ का एक कथन याद आता है कि "मैं कहॉ बजाता हूँ, वो तो बज जाती है ।" [1] यही तो स्फुरण है । स्फुरण का विश्लेषण करते हुए वे उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं कि आत्माभिव्यक्तिवादियों का एक पूरा का पूरा समूह है । जिन महाकवि जयशंकर प्रसाद की चर्चा किसी साहित्यिक राजनीति के चलते बहुत कम की जाती है और लगभग उन्हें दरकिनार कर दिया जाता है, वही प्रसाद लिखते हैं – " काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है, जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं हैं । आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था, जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारूल में सहसा ग्रहण कर लेती है ।" [2] प्रसाद असाधारण अवस्था को भी स्पष्ट करते है कि " शाश्वत चेतना या चिन्मयी ज्ञानधारा, जो व्यक्तिगत स्थानीय केन्द्रो के नष्ट हो जाने पर भी निर्विशेष रूप से विद्यमान रहती है । प्रकाश की किरणों के समान भिन्न–भिन्न संस्कृतियों के दर्पण में प्रतिफलित होकर वह आलोक को सुंदर और उर्जास्वित बनाती है ।" [3] 'स्फुरण' और 'असाधारण अवस्था' दोनां संकल्पनाओं को विजय बहादुर सिंह एक ही मानते हैं, वे कहते हैं कि 'प्रसाद की जो असाधारण अवस्था है मेरे लिए वही स्फुरण है।'

2)कविता में कुशलता–प्रविण पर आलोचना लिखते हुए विजय बहादुर सिंह कहते कि 'कविता में कुशलता–प्रविण एक प्रकार का बुध्दि का व्यापार है । प्रवीण फिर भी काव्य का शब्द है । घनानंद को भाषा–प्रवीण कहा भी जाता है, किन्तु तुलसीदास जैसे बडे कवि, जो परम्परा और शास्त्र के गहरे जानकार थे, वे भी यही कहते हैं कि "काव्य व्यापार का संबंध सत्य से हुआ करता है ।" यह वही सत्य है जिसे लोक सत्य कहते हैं । यह व्यक्ति–सत्य से उपर और आगे का अनुभव है । यह व्यक्तित्व से समर्पण की मॉग करता है । वही जो अज्ञेय की असाध्य वीणा में केश कंबली के पास है ।' लोकसत्य इस संकल्पना को लेकर विजय बहादुर चिंतित हैं, वे कहते हैं कि 'मुझे खेद है कि कवियों का एक संप्रदाय का 'लोक'पूरी तरह किताबी है । संकीर्ण और साम्प्रदायिक अर्थों से ग्रस्त है । इनके पास न परम्परा बुध्दि है, न लोकनिष्ठा । यह कविता और साहित्य के धंधेबाज किस्म के लोग हैं । इन्हें कोई विधाता नहीं समझा पाएगा कि काव्य शास्त्रानुवार नहीं लोकानुभवों का अनुभव है ।'

3)'लोक' का अर्थ स्पष्ट करते हुए विजय बहादुर सिंह कहते हैं कि कुछेक लोग लोक का अर्थ केवल भौतिक या फिर ग्रामांचल से ले रहे हैं । जैसे प्रेमचंद ग्रामांचल के कथाकार नहीं है? 'लोक' भी ठेठ गॉव या ठेठ शहर नहीं है । इन प्रवृत्ति के पाखण्ड के विरूध्द आवाज उठाते हुए विजय बहादुर सिंह अपनी मान्यता प्रस्तुत करते हैं । 'वह एक विशेष भू–भाग में, अवधारणा समाज में, एक सांस्कृतिक जीवन व्यापार में अपनी परम्परा और उसके सपनो में, जैसा दिखता, करता, सोंचता, प्रतिक्रिया करता है, वह सब मिलाकर 'लोक' बनता है । धर्म राजनीति, कला, उद्योग–व्यापर में उसकी जो अपनी ईजाद है, विज्ञान की खोजे हैं, सभ्यताओं का निर्माण है, धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य का विभेद है, सब इसी लोक शब्द के अंतर्गत आता है।" [4] शुक्ल जी जब तुलसी और उनके राम के संदर्भ में 'लोकमंगल' शब्द का प्रयोग करते हैं तब इसमें आयोध्या और लंका के लोग तो आते ही हैं, चित्रकुट से किश्किन्धा तक के स्थावर जंगम सब शामील है । प्रेमचंद के यहॉ खेत है, पशु–पक्षी है, किसान है, यहॉ तक की जमींदार, साहुकार, पण्डित–पुजारी भी हैं । इस तरह लोक एक जटील और बहुरंगी शब्द है । एक अर्थ में यह समग्र भौतिक जीवन ।

4)आलोचक साहित्य में मौलिकता पर अधिक बल देता है । पर परवर्ति लेखक इसे अपने सीर ढोने का प्रयास कर रहे हैं । 'मौलिकता ' की संकल्पना को अधिक रूप से स्पष्ट करते हुए विजय बहादुर सिंह उर्दु के प्रसिध्द कथाकार इकबाल माजीद के कथन का उदाहरण देकर कहते हैं कि उनका कहना था कि " जिसे परम्परा का बोध है, वही तजुर्बेकारी में सफल भी हो सकता है । परम्पराहीन व्यक्ति तो समकालीन पीढी की तरह अच्छे खासे मुगालते में रहता है।" [5] परम्परागत होने का अर्थ है कि सातत्य में विश्वास करना और उसे तरोताजा बनाए रखना है । मौलिकता और कुछ नहीं यही ताजगी है, परम्परा में जो मौजूद तो थी पर उसे प्रतिभाधारी ने ही लक्षित किया इसलिए मौलिकता से ही प्रतिभा की पहचान होती है । विजय बहादुर स्वयं एक कवि हैं, पहले वह अपनी कविता को उसी आलोचक दृष्टि से देखते जैसे अन्य आलोचक देखता है । उस कसोटी पर ठीक लगने पर ही वह अपनी कविता को मान्यता देते हैं ।

5)लेखक को अपने अनुभवों के प्रति ही नहीं भाषा–समाज के प्रति भी एक रचनाशील बौध्दिक की तरह ईमानदार रहना चाहिए । उसे सत्त–राजनीति से दूरी रखते हुए जनता की राजनीति, जनहितोष अपने शब्दों में व्यक्त करना चाहिए । यदि ऐसा नहीं करता तो वह एक नये चारण जैसा है और क्रांतिकारी लेखकों की विरासत का कुल–कलंक है । साहित्य के ऐसे दलालों का फैसला तो समय ही करता है ।

6)मानक–आलोचना को विजय बहादुर सिंह ने पारिभाषित किया है । उनका कहना है कि 'भारतीय काव्यशास्त्र के आधार पर कहें तो जो हृदय की उन्मुक्तावस्था की खोज खबर रख पाए । यानी कि रचनाकार की रचना–भूमियों का दिग्दर्शन कर सके । मेरे लिए इससे बहुत ज्यादा फर्क नहीं पउता कि कोई

कृति वैचारिक स्तर पर मुझसे दूर है । पर संवेदना के जाने–पहचाने रूपों और स्तरों को छू पाने वाली कृतियॉ ही वे मानक देती हैं, जिनसे आलोचना की गतिशीलता बनती है । फिर भी, वह आलोचना, जो रचना की प्रेरणाओं, भाव–भूमियों, अभिव्यक्ति–पध्दतियों और जीवन–दृष्टियों की जांच परख समग्र भाव से करती है, वही मानक है मेरे लिए । आलोचना कोई उपर से थोपी जाने वाली चीज नहीं है । उसके सूक्ष्म–संकेत रचना में पहले से रहते हैं । अगर वह सचमुच रचना है तो । नागार्जुन और मुक्तिबोध दो स्वभावों के कवि हैं । दोनों की विचारधारा एक है । किन्तु दोनों के रचना–मानक एक नहीं हैं। नागार्जुन में प्रगीतात्मक विलक्षणताऍ है, मुक्तिबोध में प्रबन्धात्मक प्रगीतात्मकता । आलोचना तो रचना की प्रयोगशाला का निष्कर्ष है ।'[6]

7)लेखकों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और वर्तमानकालीन सरकार की नीतियों के सबंध में डॉ. विजय बहादुर सिंह का स्पष्ट मत है कि श्अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अब एक मुहावरा रह गया है । इस काल में अभिव्यक्ति का सही खतरा उठाने वाले लेखक, कवि कितने हैं । इस काल में कई ऐसे लेखक, कवि हैं, जो बात स्वतंत्रता की कहते हैं और फिर काम व्यवस्था की जी हुजूरी और चापलूसी का । हमारा लोकतंत्र और समाज अभी भी सामंती और कुसंस्कारों के गिरफ्त में है । फिर स्वतंत्रता क्या मतलब अब हिन्दी का बहुसंख्यक लेखक समाज समझौता परस्त और स्वार्थवादी है । ऐसों के लिए क्या स्वतत्रता और क्या अभिव्यक्ति का संकट ।'[7] इनका तात्पर्य है कि अभिव्यक्ति के प्रति आज का लेखक समाज न्यायप्रिय नहीं रहा है।

8)रचनाकार और आलोचक इन दोनों की भूमिकाओं को लेकर विजय बहादुर सिंह टिप्पणी करते हुए अपने विचार अभिव्यक्त किये । 'सभी समयों में रचनाकारों और आलोचकों के संबंध विवादास्पद रहे हैं । रचनाकार भी 'निज कवित्त केहि लाग न नीका' से परेशान करता रहा है, अपने आलोचक को । आलोचक भी किसी विशेष स्थिति में कई रचनाकारों से अन्याय कारणों से निपटता आया है । दोनों मानव स्वभाव की सीमाओं से परे नहीं रहे ।' विजय बहादुर सिंह इसकी कसोटी लोक पर छोड देते हुए कहते हैं कि मसलन दुश्यंत कुमार जन मानस में पैठ गए हैं । जन की बात और जन–कला, साहित्य के प्रति अपनी निष्ठा जताने और घोषित करनेवाले लोग दुश्यंत को अपनी आलोचना का पात्र नहीं मानते । वे न तो उन्हें रिजेक्ट करते हैं, न मंजूर ।' [8]

कहा गया है कि रचनाकार भटके तो उतना असर सांसकृतिक जीवन पर नहीं पडता जितना कि आलोचक के गुमराह होने पर । इस संबंध में डॉ. विजय बहादुर सिंह का मत है कि 'आ. रामचंद्र शुक्ल ने कबीर के बारे में जो लिखा, उसका परिमार्जन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को करना पडा । शुक्लजी नंददुलारे वाजपेयी से नाराज थे और इतिहास में पंत के आलोचक के रूप में डॉ. नगेंद्र की तारीफ करते थे । जिन बातो को लेकर यह तारीफ है, उनकी उत्कृष्टता वाजपेयी जी में खूब है, बल्कि अधिक सूक्ष्मतर रूप में ।'[9] आलोचक को जिम्मेदार तो होना पडेगा, उसे मित्र–लेखक के ड्राइंग–रूम से बाहर निकलकर परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्वो से विवेकपूर्ण संवाद करने की चुनौती मोल लेनी होगी । तभी वह अपनी प्रतिश्ठा बचा पाएगी ।

9)आलोचना में सिध्दांत और व्याख्या के महत्व को स्पष्ट करते हुए विजय बहादुर सिंह कहते हैं कि 'सिध्दांत और व्याख्या में से व्याख्या प्राथमिक कर्म है, ठीक प्रयोगशाला में प्रयोग की तरह । प्रयोग से ही निष्कर्ष आता है । व्याख्या से गुजर कर किसी निश्कर्श पर पहुॅचना ही सिध्दांत की संभावनाओं को जन्म देता है । मंजिल नहीं । व्याख्या के लिए व्याख्या नही हो सकती । व्याख्यात्मक आलोचनाऍ भी अंततः किन्हीं न किन्ही बातों को निचोड रूप में रखना चाहती है । मौलिक कृतियों के सौंदर्य की पहचान बगैर व्याख्या के नहीं हो सकती । थोपे हुए सिध्दांतो के बल पर 'कामायनी एक पुनर्विचार'(मुक्तिबोध) और 'कामायनी के अध्ययन की समस्याऍ (डॉ. नगेंद्र) जैसी कृतियॉ ही आ सकती हैं । रचना की प्रकृति और प्रतिज्ञा को समझे बगैर किसी पूर्व निर्धारित वाद या सिध्दांत पर उसे कसना एक प्रकार का कसाईपन है । क्या मुक्तिबोध पर पुनर्विचार करते हुए अद्वैत दर्शन का आधार लेकर बढना उचित होगा ? इसलिए बने–बनाए सिध्दांत सिर्फ आलोचना की एकत्रित की हुई पूंजी का काम करते हैं । व्याख्या के सहयोग से इस पूंजी को बढाया जा सकता है । यह भी सच है कि व्याख्या कर्म में सिध्दांत कहीं न कहीं हुआ करते हैं और व्याख्याकार का मार्गदर्शन भी करते हैं ।'[10]

10) परंपरा का मुल्यांकन करते हुए परंपरा के प्रति आलोचक का दुष्टिकोण कैसा होना चाहिए और मूल्यांकन के पुनर्मुल्यांकन की आवश्यकता तथा उसके दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए विजय बहादुर सिंह ने अपनी मौलिक धारणाओं की अभिव्यक्ति की है । उनका मानना है कि 'पुनर्मुल्यांकन एक प्रकार से रचना का पुर्नभाश्य जैसा है । कबीर, तुलसी आदि महान कवियों का बार–बार युगानुरुप मूल्यांकन होगा, क्योंकि इनके साहित्य में वे सादी संभावनाऍ हैं। रमेश कुन्तल मेघ और युगेश्वर ने तुलसी का पुनर्मूल्यांकन किया तो डॉ. धर्मवीर कबीर का पुनर्मूल्यांकन कर रहे हैं ।' भारत जैसे प्राचीन समाज में परंपराओं का प्रश्न बहुत जटिल और चुनौतीपूर्ण है । पर इसे आसान करने के लिए जिस कठिन सांस्कृतिक समाधि और विद्या–साधना की जरूरत है, उसका हमारे समय में बस एक ही उदाहरण है– डॉ. रामविलास शर्मा । शेष जो हैं, वे इधर या उधर की पूंजी से अपनी प्रतिभा का चमत्कार बिखेर रहे हैं । उनकी चिंताऍ साफ बताती है कि समाधि से बाहर आ चुके लोग हैं ये ।'[11]

11)आलोचना की जिम्मेदारी को लेकर विजय बहादुर सिंह का मंतव्य है कि 'आलोचना एक ऐतिहासिक जिम्मेदारी है । जिसे हम संस्कृति कहते हैं । उसमें सौंदर्य बोध भी आता है और विचार भी सौंदर्य के अंतर्गत ही है । आलोचना का रूप, भाव और विचार भी सौंदर्य के अंतर्गत आते हैं । जूही की कली से कुकुमरमुत्ता तक, सेवासदन की सुगन से गोदान का गोबर और झुनिया तक जिस गतिशीलता का प्रमाण मिलता है, ओचक को उसके अंतर्निहित व्यापारों की खबर तो रखनी होगी ।'

12)रचना और आलोचना की जब तुलना की जायेगी तो आलोचना को किस स्थिति में रखा जायेगा और रचना और आलोचना में समानता का क्या आधार होगा इसके संबंध में विजय बहादुर सिंह की स्पष्ट धारणाऍ हैं । साहित्य मात्र रचना है और अगर आलोचना भी साहित्य है तो रचना और आलोचना को अलग–अलग नहीं नापा जाता । आलोचना को जो लोग द्वित्तीयक मानते हें वह गलत हैं । इस संबंध में वह जयशंकर प्रसाद के मत का उदाहरण देते हैं कि ' प्रसाद ने एक बहुत गंभीर बात काव्य–उक्ति के माध्यम से कही है कि, 'रूप रिझाता है, ऑखे रिझती हैं ।'[12] आलोचना को समाज और सभ्यता की सबसे गहरी और खूबसूरत ऑख मानना होगा । ऑखे न हो तो रूप की सत्ता बे–अर्थ हो जाएगी । आलोचना ही है जिसके सहयोग और सक्रिय व्यापार से साहित्य के रूप–कुरूप की खबर लगती है। त बवह द्वित्तयक नहीं हो सकती । प्रसाद–निराला को नंददुलारे वाजपेयी, पंत को नगेन्द्र और निराला को रामविलास शर्मा न मिले तो इन्हें लोक तक भगीरथ की तरह ले आने का पौरूश कैसे संभव हो पाता ।

13)वर्तमान परिस्थितियों में आलोचक का धर्म है कि 'अपने समय की सृजनशीलता या कृतिपरकता की पहचान और परंपरा तथा आधुनिकता के संधिस्थलों के बीच उनकी पदस्थापना करनी चाहिए । कालिदास का मुहावरा है कि, 'पुराना सब अच्छा नही हुआ करता, नया सब बेकार नहीं होता ।' पुराने से बहुत कुछ सीखना चाहिए, पुराने को ऑख मूंद कर नकार देने पर नया होना कठिन होगा । यही आलोचक का धर्म है ।

14)डॉ. विजय बहादुर सिंह डॉ. रामविलास शर्मा को अपना आदर्श मानतें है फिर उनके द्वारा मार्क्सवाद के संपूर्ण विचारों से वह सहमत नहीं हैं । उनका कहना है कि 'मैं मार्क्सवाद को दुनिया बदलने का दर्शन मानता हूॅ । पर भारत की स्थितियों को समझने में मार्क्सवाद मुझे हमेशा अधुरा और पर्याप्त लगता रहा है । मार्क्स के सामने यूरोप का समाज का जब कि भारत युरोप नहीं है । यह यहां के मार्क्सवादियों को देखकर भी समझा जा सकता है जो सर्वहारा नहीं है, बाह्मण–क्षत्रिय–कायस्थ–वैश्य आदि भी हैं । मार्क्स में से हमें बहुत कुछ छानना पडेगा, गांधी और आंबेडकर को सामने रखना होगा । वैदिक और अवैदिक विचारधाराओं को भी । तबी भारत के साथ मार्क्सवाद का न्याय होगा ।'

15)आलोचना क्षेत्र को विकसीत करने में, उसके प्राचार–प्रसार में पत्र–पत्रिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है । इस संबंध मे विजय बहादुर सिंह की धारणा है कि 'इन पत्रिकाओं का योगदान तो है, इसमें कोई संदेह नहीं हैं । पर कहीं–कहीं इनमें वर्ग वर्ण व्यवस्था काम करती है । कभी–कभी अर्थ–प्रधानता और कभी–कभी मठवाद भी' इनको इससे मुक्ति मिलनी चाहिए ।

16)विभिन्न लेखक संघ इस समय अपना बिस्तर बिछा कर बैठ गये है । संगठन विचारधारा से जुडा हुआ होता है, परंतु वर्तमान काल में संगठन में विचारधारा की शुध्दता और पवित्रता का महत्व उतना नही है, जितना नेतृत्व और नेतृत्व से जुडी महत्वकांक्षाओं का है । इस संबंध में विजय बहादुर सिंह की धारणा है कि 'इस वक्त संगठन भी मठों में बदलकर पुष्तैनपी जागीरों की तरह हो गया है ।'

17) वर्तमानकाल में नई पीढी के रचनाकारों के संबंध में विजय बहादुर सिंह का विचार है कि समकालीनों में उदय प्रकाश मुझे बेहद समर्थ रचनाकार लगते हैं । उदय प्रकाश में सबसे ज्यादा गुस्सा और बेचैनी है, यही आज का प्रतिनिधि सर्जक है । यह गुस्सा कई रूपों में प्रकट होता है । इस वक्त ताजा कवि रवीन्द्र प्रजापति (विदिशा), संजय चतुर्वेदी, दलित लेखकों में ओमप्रकाश वाल्मीकी आदि युवा कथाकारों के नाम लिए जा सकते है । इस वक्त जो लोग कुछ बेहद नया और अनोखा लिख रहे हैं और हिन्दी जिससे सचमुच उपकृत उपकृत हो रही है, उसमें काशीनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, अमृतलाल बेगड, अनुपम मिश्र आदि हैं । यायावर की डायरी और मेरे प्रियजन लिखनेवाले वसन्त पोतदार, विचार का डर लिखने वाले कृष्ण कुमार को शायद ही हिन्दी भूला पाए । प्रेम दुबे, विनय दुबे की कविताएँ मुझे आकर्शित करती है । उपन्यास और आत्मकथाओं में मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, प्रतिभा अग्रवाल, जैसी महिलाएँ बगैर किसी प्रदर्शनात्मक तेवर के अपनी छाप छोडती हैं । एक पाठक के रूप में हमेशा यह महसूस करता हूँ कि किस लेखक का कन्सर्न भीतरी है और कौन लेखक बने रहने के लिए लिख रहा है । आलोचना की निर्णायक कसोटी मेरे लिए यही है ।

18)समकालीन युग में आलोचक के सम्मुख आलोचना की चुनौतियों को उजागर करते हुए विजय बहादुर सिंह ने अपना स्पष्ट मत प्रकट किया है। वे कहते हैं कि समकालीन आलोचना को अपनी परंपराओं में भी अपनी जडे खोजने होगी । भारतीय दृष्टि का भी अपना विश्वजनीन चेहरा है, हो सकता है हमारे सौंदर्यबोध, हमारे समग्र जीवन–बोध और भाषा की सृजनशीलता की अपनी भंगीमाएँ हैं । हमारे पास अपना एक विशाल सांस्कृतिक भूगोल है जो अपनी विशेषता रखते हुए खुबसूरत है । दुनियॉ के लोग य क्यूँ चाहते हैं कि यूरोप अगुवाई करे, यही मानदंड बने और हम सब इसे ऑख–मूँद कर स्वीकार करें । मुझे इस विचारधारा के आलोचकों से पूछना है कि टुण्ड्रा प्रदेश और सहारा का जीवन–बोध एक हो सकता है ?विजय बहादुर सिंह के इस विचार को इस उदाहरण से समझा जा सकता है कि ' भारत में शराब पीना सभ्यता का लक्षण नहीं है, समाज ऐसे को शराबी कहकर तिरस्कार की दृष्टि से देखता है । पर पश्चिम के कई देशों में शराब पीना सभ्यता का लक्षण माना गया है । उसमें भी जिसके पास जितनी पूरानी शराब होगी वह उतना अधिक सभ्य कहलाता है । उत्तर–दक्षिण गोलार्ध के कई देश ऐसे हैं, जिन्हें जीने के लिए शराब पीना अनिवार्य है ।' फिर हमारे और पश्चिम के आलोचना के मानदंड एक कैसे हो सकते हैं । इसका तात्पर्य यही नहीं की हम पश्चिम के विचारों के विरोध में है, लेकिन हमारे पास भी प्राचीन सभ्य और विशाल परंपरा है । इस संबंध में विजय बहादुर सिंह का स्पष्ट मत है कि श्अगर वैज्ञानिक और तर्कपूर्ण दृष्टिकोण ही आधुनिकता है, तो फिर पूछना पडेगा कि गर्म देश में टाई और मोजे की संगति क्या है ?इसे अकुल कहें या फिर नकल कहें ?हमें गांधीवाद की विश्वजनीनता और मार्क्सवाद की भारतीयता पर भी विचार करना होगा ।'[13]

निष्कर्ष :–

आलोचना के दो मुख्य आधार कह सकते है– सृजन आलोचना और सर्जक आलोचना। सृजन आलोचना में आलोचक रचनाकारों द्वारा जिस विषय का प्रतिपादन किया है, उसका तर्क–वितर्क करता है । सर्जक आलोचना में रचनाकार के निजी तथा बुनियादी व्यक्तिमत्व की खोज की जाती है । डॉ. विजय बहादुर सिंह ने अपने गुरू का आलोचना–मार्ग तो अपनाया, उनके मार्गदर्शन में छायावाद के उत्कृश्टतम सृजन और सर्जक पर शोध भी किया, लेकिन उन्होंने आलोचना का कोई घरानावाद स्वीकार नहीं किया । न हजारी प्रसाद का, न रामविलास शर्मा का, न अपने गुरू आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का । इन्होंने कवि व्यक्तित्व को लेकर जो रचना उसमें 'नागार्जुन संवाद ' यह अद्वितीय रचना है । गद्य में इस प्रकार की भी रचना लिखी जाती है, जिसके माध्यम से सृजन क्षेत्र की कई खुबियों का बखान किया जा सकता है । यह रचना एक ओर आत्मीयता का उन्मोचन है, तो दूसरी ओर विमर्श का उत्कर्ष । संवाद माध्यम तो अवश्य है, लेकिन पूरी पुस्तक में संवाद एक ऐसे कमरे की तरह फिट है, जो नागार्जुन के हर क्षण के शब्द–बिम्ब उतार रहा है । यह सर्जक की समूची भावभूमि का उसी के साथ बैठ कर उत्खनन या अन्वेशण है, समूची सृजन प्रकिया की पकड है और विमर्श का अत्यंत सारगर्भित बौध्दिक उन्मेश है । भाषा जिस भाव–संवेग के साथ यहॉ अपने समूचे तटबंध तोडती हुई वही है, ऊर्जा के साथ और उत्कृष्ठता के साथ आई है, जैसा हिन्दी के किसी भी संवाद या साक्षात्कार में देखने को नहीं मिलता । यह रचना हिन्दी की एक ऐसी रचना है, जिसमें जीवनी, निबंध, डायरी, साक्षात्कार और संवाद का एक साथ संयोजन होकर भी भाषा और शिल्प की नूतनतम संभावनाओं को भी प्रकट करते हैं । विजय जी उन आलोचकों में से हैं जिन्होंने आलोचना को नई दिशाएँ प्रदान की हैं । साहित्य और आलोचना का संबंध मानव, समाज और देश के हित के साथ जुडा हुआ हो उसकि विजय जी ने सरहाना की है । वे हिन्दी साहित्य और आलोचना से निरंतर अपना संबंध बनाए रखे हुए आलोचक हैं । विजय जी ने हिन्दी आलोचना को लेकर बहुत सारी रचनाएँ निर्माण की है, फिर भी वे प्रसिद्धि की अभिलाशा से बचे हुए हैं ।

संदर्भ–सूची

1.सं.शैलेंद्र कुमार–अपर्याय वि.ब. सिंह 'राग भोपाली'विशेषांक–जून, 2004
2.विजय बहादुर सिंह से इन्टरव्यू दैनिक भास्कर 2 एप्रिल 1995
3.विजय बहादुर सिंह से इन्टरव्यू दैनिक भास्कर 2 एप्रिल 1995
4.विजय बहादुर सिंह से इन्टरव्यू दैनिक भास्कर 2 एप्रिल 1995
5.विजय बहादुर सिंह से इन्टरव्यू दैनिक भास्कर 2 एप्रिल 1995
6.सं. शैलेंद्र कुमार–अपर्याय वि. ब. सिंह 'राग भोपाली' विशेषांक–जून. 2004
7.संपादक, मनोहर चौरे, शिखरवार्ता मासिक पत्रिका, भोपाल जुलाई 1998
8.संपादक रमेश दवे, समावर्तन मासिक पत्रिका, माधवी, उज्जैन, (म.प्र.) दिसम्बर–2010 !
9.विजय बहादुर सिंह से इन्टरव्यू शोधार्थी
10.विजय बहादुर सिंह से इन्टरव्यू शोधार्थी
11.विजय बहादुर सिंह से इन्टरव्यू शोधार्थी
12.विजय बहादुर सिंह से इन्टरव्यू शोधार्थी
13.विजय बहादुर सिंह से इन्टरव्यू शोधार्थी